शब्द–ब्रह्म
ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 अप्रैल 2013

तुलनात्मक साहित्य में अनुवादक की भूमिका

प्रा.तेजाभाई एन.पटेलिया
हिन्दी विभाग
एम एम चौधरी आर्ट्स कॉलेज, राजेंद्र नगर, भीलोड़ा
साबरकांठा, उत्तर गुजरात

शोध संक्षेप

विश्व के ग्लोबल गांव में तब्दील हो जाने के बाद से दुनियाभर के साहित्य को जानने की जिज्ञासा बलवती हुई है। साहित्य के तुलनात्मक अध्ययन के द्वारा वैचारिक साम्य अथवा वैषम्य प्रदर्शित करने के लिए अनुवादक की भूमिका महत्वपूर्ण हो गई है। वह एक तरह से मध्यस्थ की भूमिका में है। अनुवादक केवल दो भाषाओं का जानकार ही नहीं होता, बल्कि वह भाषा के साथ-साथ भौगोलिक, सांस्कृतिक परिवेश से भी अवगत होता है, जो उसे भावार्थ समझने में सहायता करता है। प्रस्तुत शोध पत्र में तुलनात्मक साहित्य में अनुवादक की भूमिका पर विचार करते समय आने वाली कठिनाइयों और उसके समाधान पर प्रकाश डाला गया है।

प्रस्तावना

तुलनात्मक साहित्य शब्द अंग्रेजी के 'कम्परेटिव लिटरेचर' का ही प्रतिरूप है। अंग्रेज कवि मैथ्यू आर्नल्ड ने सबसे पहले सन् 1848 में अपने एक पत्र में 'कम्परेटिव लिटरेचर' पद का उल्लेख किया था। तुलनात्मक साहित्य का आशय है वह विद्या-शाखा जिसमें दो या दो से अधिक भिन्न भाषायी, राष्ट्रीय या सांस्कृतिक समूहों के साहित्य का अध्ययन किया जाता है। दो भाषाओ के साहित्य की तुलना करना इसका मुख्य अंग है। वस्तुतः यह दो या दो से अधिक अलग-अलग भाषा साहित्य को पढने की एक विशेष पद्धति है। तुलनात्मक साहित्य के संबंध में इंद्रनाथ चैधुरी लिखते हैं, "हिन्दी में तुलनात्मक साहित्य पर पहली पुस्तक सन् 1982 में मेरे द्वारा लिखित 'तुलनात्मक साहित्य की भूमिका' प्रकाशित हुई थी। वस्तुतः बीसवीं शती के छठे दशक में डा नगेंद्र ने दिल्ली विश्वविद्यालय में एम.ए. हिन्दी के पाठ्यक्रम में 'काम्पोजिट कोर्स' के नाम से एक नया विषय समाविष्ट कर हिन्दी में भारतीय साहित्य के अध्यापन का सूत्रपात किया था।"1 विश्व कवि गुरुदेव रवींदनाथ ठाकुर ने सन् 1907 में 'विश्व साहित्य' का उल्लेख करते हुए साहित्य के अध्ययन में तुलनात्मक दृष्टि की आवश्यकता पर बल दिया। वहीं "सन् 1908 में 'तिरुवाचकम' तथा 'नालडियार' के अनुवाद की भूमिका में जी.यू.पोप ने तमिल भाषा-भाषी विद्वानों से यह आग्रह किया था कि तमिल के इन ग्रंथों के वास्तविक आस्वाद के लिए अंग्रेजी में लिखित धार्मिक कविताओं से परिचित होना जरूरी है। क्योंकि कोई भी साहित्य अपने-आप अलग अस्तित्व बनाकर टिक नहीं सकता।"2 दो भाषाओं के साहित्य की तुलना के लिए स्रोत और लक्ष्य भाषा का ज्ञान होना जरूरी है। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए जादवपुर विष्वविद्यालय में सन् 1956 में तुलनात्मक विभाग की स्थापना हुई। साहित्यिक अध्ययन में दो पक्ष होते हैं एक कलात्मक और दूसरा समाज-सांस्कृतिक संदर्भ। दुनिया के देषों की सामाजिक संरचना के अनुसार उनकी संस्कृतियां

भी भिन्न हैं। वहां के साहित्य में भाषा के माध्यम समाज और संस्कृति प्रतिबिंबित होती है। दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा का उच्च षिक्षा शोध संस्थान पहला विष्वविद्यालय था जहां एम.ए. हिन्दी के पाठ्यक्रम में 'तुलनात्मक साहित्य' को स्थान दिया गया। "बहुसंस्कृतिवाद तथा सांस्कृतिक अध्ययन के लिए विभिन्न भाषाओं के साहित्य के अनुवाद की आवश्यकता है और उच्च शिक्षा में इन अनुवादों के प्रयोग के लिए तुलनात्मक साहित्य का ज्ञान नितांत जरूरी है। विशेष रूप से भूमंडलीकरण के इस युग में विभिन्न भाषाओं और संस्कृति के विनियोजन, समांगीकरण और सहयोजन के चलते यह और भी अधिक आवश्यक हो गया है कि अंग्रेजी भाषा और पश्चिमी संस्कृति के वर्चस्व को तोड़कर अर्थात् भूमंडलीय एक प्रस्तरीय दृष्टि को नकारकर एक नये तुलनात्मक साहित्य की रचना की जाए।"3

इंद्रनाथ चौधरी ने अपनी पुस्तक के सिद्धांत विवेचन के अंतर्गत कई अध्यायों में अनुवाद सिद्धांत का विस्तार से विवेचन किया है। वे लिखते हैं कि, "आखिरकार अनुवाद ही इस अनुषासन की आधारपीठिका है और आज के संदर्भ में सांस्कृतिक अध्ययन के लिए अंतर्गत अनुवाद ने एक बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान बना लिया है।"4

विवेचन

तुलनात्मक साहित्य में तुलनाकार जब तुलना करता है, तब उसे दोनों साहित्यिक भाषाओं का ज्ञान होने के साथ-साथ अनुवादक की भूमिका भी निभाना पड़ती है। अनुवाद संप्रेषण का सशक्त साधन सिद्ध हुआ है। "अनुवाद की वजह से भाषाएं समृद्ध हो रही हैं। किसी रचना का अनुवाद किसी दूसरी भाषा में हो जाता है तो वह रचना अधिक पाठकों तक पहुंचती है। अनुवाद के बल पर रचनाओं का भौगोलिक विस्तार हो जाता है और उक्त भाषा की महत्ता का बोध अन्य क्षेत्र के लोग अनुभव करने लगते हैं। बंगाल के दो लेखक विश्वकवि गुरुदेव रवींद्रनाथ ठाकुर तथा शरतचंद्र चट्टोपाध्याय एवं ऐसे अनेक लेखक अनुवाद के बल पर सारे भारतवर्ष में ही नहीं विश्व के प्रिय हो गए। उन्हें पढ़कर अन्य लेखकों को अपनी-अपनी भाषा में चिंतन करने की प्रेरणा मिली।"5 इस दृष्टि से तुलनात्मक साहित्य में अनुवादक की भूमिका महत्वपूर्ण हो जाती है। भारत जैसे बहुभाषिक राष्ट्र में अनुवाद अपना अलग महत्व रखता है। अनुवाद के माध्यम से पाठक केवल परिवेश से ही नहीं लेखक की मूलचेतना से जुड़ना चाहता है। ऐसे में अनुवादक की भूमिका बड़ी मुश्किल हो जाती है। नित्षे का कहना है कि भाषा तत्व को जानती है व्यक्ति को नहीं। इसका अर्थ है भाषा के आगे व्यक्ति का महत्व गौण हो जाता है। भाषा के आगे लेखक भी लाचार है। ऐसे में अनुवादक की स्थिति क्या हो सकती है ? एक दूसर सवाल यह भी बना रहता है कि एक व्यक्ति कितनी भाषाएं जान सकता है? यहां भाषा का मतलब केवल लिपि से नहीं बल्कि सांस्कृतिक प्रतीक के रूप में समझना है। कोई व्यक्ति जब किसी भाषा को जानने का दावा करता है तब वह उस भाषा-भाषी संस्कृति की हर बारीकियों को जानने का दावा करता है। लेखक दरअसल यही काम करता है। वह भाषा के जरिये संस्कृति को पाठक के सामने इस तरह से प्रस्तुत करता है कि पाठक उस प्रदेश की सांस्कृतिक चेतना को पहचान जाता है। यह काम लेखक के लिए भी आसान नहीं है। तब

अनुवादक के लिए कितना कठिन हो सकत है, हम समझ सकते हैं। अनुवाद के समय अनुवादक को अलग-अलग प्रकार की भूमिकाएं निभाना पड़ती हैं। उसे अनेक बातों का ध्यान रख पड़ता है। जहां शब्दानुवाद नहीं हो पाता वहां उसे ,खासतौर से काव्य के क्षेत्र में भावानुवाद से काम लेना पड़ता है। जब कोई कृति को वह हाथ मे लेता है, तब वह उसे एक पाठक की तरह पढ़ता है, उसके सांस्कृतिक मूल्यों को पहचानता है, उसके प्रतीकार्थों को पहचानकर अर्थग्रहण करता है और अंत में उसे कथ्य भाषा में अनूदित या पुनर्स्थापित करता है।

लेखक के कार्य से अनुवादक का कार्य कुछ अलग और विशेष उत्तरदायित्वपूर्ण होता है। जहां लेखक स्वतंत्र रूप से सोचता हुआ अपने विचारों और भावों को प्रकट करता है, वहां अनुवादक स्वतंत्र नहीं है। उनकी शक्ति और दृष्टि बंधी रहती है। कभी-कभी लेखक के विचारों से असहमत होने पर भी उसे उनके विचारों को प्रकट करना पड़ता है।

अनुवादक को कृतिकार और कृति की मूल चेतना से सदैव जुड़े रहना होता है। ऐसा नहीं है कि अनुवादक ने किसी कृति का अनुवाद संपन्न कर अपने कर्तव्य की इतिश्री समझ ली। उसे पाठक को भी उस स्तर पर लाने का दायित्व निर्वहन करना पड़ता है। तुलनाकार अनुवाद के द्वारा पाठक को दोनों रचनाओं के साम्य और वैषम्य से अवगत कराकर दोहरी रसानुभूति से जोड़ता है। दो भाषाओं में जो तात्विक अलगाव रहता है वह पाठक को ध्यान में नहीं आता, लेकिन अनुवादक उस अंतर को पहचान लेता है। हर भाषा में शब्द के अर्थ अपने परिवेश और प्रकरण आदि के अनुसार अलग-अलग हो सकते हैं। इसलिए अनुवादक को दोनों भाषाओं का व्याकरण, संरचना, कहावतें, मुहावरे, शब्दों के अर्थ आदि का ज्ञान हो वरना अर्थ का अनर्थ हो सकता है। वस्तुतः "श्रेष्ठ अनुवादक को मूल भाषा और लक्ष्य भाषा पर समान अधिकार होना जरूरी है। इसमें भी लक्ष्य भाषा पर अधिक। श्रेष्ठ अनुवादक की यह भी कसौटी है कि वह परावलंबी नहीं होना चाहिए। अनुवादक को मूल कृति से पूरा न्याय करना चाहिए। काव्यानुवाद में और सांस्कृतिकता लिए हुए शब्दों के अनुवाद में कठिनाई उपस्थित होती है। उदाहरण के लिए 'प्रेमचंद के लिए गणित गौरीशंकर था' का अनुवाद Mathematics was very tough subject for permchand योग्य है लेकिन गौरीशंकर की अर्थच्छाया very tough में पूरी तरह से व्यक्त नहीं होती है।"6 इस प्रकार तुलनाकार को द्विभाषी ही नहीं, द्विसांस्कृतिक भी बनना होगा। इस संदर्भ में एस.एस.प्रवर का कहना है, "संपूर्ण सांस्कृतिक जानकारी प्राप्त करना तुलनाकार के लिए असंभव है, फिर भी अनुवादक के अभ्यास में उसे दोनों कृति की सांस्कृतिक भूमिका से परिचित होना जरूरी है।"7 मूल कृति अगर भाषा कर्म पर अवलंबित होगी तो उसका अनुवाद अधिक चुनौतीपूर्ण प्रतीत होगा। लेखक भाषा का जितना अधिक रचनात्मक इस्तेमाल करेगा, अनुवाद उतना ही दुष्कर होगा। कविता एवं अन्य रचनात्मक साहित्य की तुलना में अनुवादक को खुद की गुंजाइश से पार उतरना है। यह काम कठिन अवश्य है, लेकिन अनिवार्य भी है। जान फ्लेचर ने ठीक ही कहा है, "संस्कृति के महालय में अनुवाद एक सर्वव्यापक तत्व है।"8

अनुवाद स्वयं एक अर्थगठन है, एक ऐसी रचनात्मक प्रक्रिया है, जिसमें अनुवाद को लेखक के विश्व में पुनः प्रवेश करना होता है। यह बात कभी-कभी उसके ध्यान से हट जाती है। इसका अर्थ ऐसा नहीं है कि उस मूलपाठ से निष्ठा बनी रहने की चिंता न हो। अनुवादक की अपनी एक मर्यादा भी होती है कि वह मूल रचना को ठीक उसी रूप में रख नहीं पाता। इसका मूल कारण यह है कि एक अनुवादक की अपनी शैली होती है जो उसकी प्रतिभा एवं युगचेतना से प्रभावित रहती है और दूसर मूलभाषा और लक्ष्य भाषा का अर्थ और स्वरूप की संरचना शायद समान हो, किंतु वही की वही तो कभी नहीं होती। ऐसी स्थिति में अनुवाद समरूप न होकर समतुल्य बना रहता है। जैसे अंग्रेजी में हम कहते है She with me' यहां She अंग्रेजी में नारी का सूचन है। हिन्दी में इसका अनुवाद होगा 'वह मेरे साथ है', यहां वह में स्त्री या पुरुष भी हो सकता है। अतः वह शब्द से मूल अर्थ प्रकट नहीं होता। निष्कर्षतः तुलनात्मक साहित्य के अध्ययन में तुलनाकार को अनुवादक की भूमिका निभाते समय अनेक कठिनाइयों का सामना करते हुए अनुवाद को सफलता के स्तर पर पहुंचाना पड़ता है।

संदर्भ:

1 तुलनात्मक साहित्य: भारतीय परिप्रेक्ष्य, इन्द्रनाथ चौधरी , वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2006, आमुख 7
2 तुलनात्मक साहित्य: भारतीय परिप्रेक्ष्य, इन्द्रनाथ चौधरी , वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2006, आमुख 8
3 तुलनात्मक साहित्य: भारतीय परिप्रेक्ष्य, इन्द्रनाथ चौधरी , वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2006, आमुख 9
4 तुलनात्मक साहित्य: भारतीय परिप्रेक्ष्य, इन्द्रनाथ चौधरी , वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2006, आमुख 10
5 तुलनात्मक साहित्य: सिद्धांत और विनियोग, डा.प्रसाद ब्रह्मभट्ट, यूनिवर्सिटी ग्रंथ निर्माण बोर्ड, गांधीनगर, पृष्ठ 56
6 तुलनात्मक अध्ययन: भारतीय भाषाएं और साहित्य, संपादक डॉ.राजूरकर, डॉ. राजकमल बोरा, वाणी प्रकाशन, दरियागंज नई दिल्ली, पृष्ठ 22
7 तुलनात्मक साहित्य: भारतीय संदर्भ, अनुवादक संपादक डा.चैतन्य जसवंतराय देसाई, यूनिवर्सिटी ग्रंथ निर्माण बोर्ड, गांधीनकर, पृष्ठ 107
8 तुलनात्मक साहित्य: सिद्धांत और विनियोग, डॉ.प्रसाद ब्रह्मभट्ट, यूनिवर्सिटी ग्रंथ निर्माण बोर्ड, गांधीनगर, पृष्ठ 89